श्री एक सौ सत्तर
तीर्थंकर विधान
(लघु संस्करण)

रचयिता
राजमल पवैया

प्रकाशक
अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन
ए–४, बापूनगर, जयपुर – ३०२०१५
फोन : ०१४१–२७०७४५८, २७०५५८१
E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

प्रथम संस्करण – १ हजार
१५ जनवरी २०१६
(मकर संक्रांति)

मूल्य – १० रुपये

मुद्रक :
सन् एन सन् प्रेस
तिलक नगर, जयपुर

प्रकाशकीय

परिणामों की विशुद्धि के प्रयोजन से जिनेन्द्रदेव के गुणानुवाद के लिए श्रावक को अनेक प्रकार के माध्यमों की आवश्यकता होती है। पूजन-विधान-भक्ति आदि इसी भाव की पूर्ति के साधन हैं। आध्यात्मिक कविवर राजमलजी पवैया द्वारा अध्यात्म से भरपूर अनेकानेक विधानों की रचना की गई। उन्होंने ढाई द्वीप में होने वाले १७० तीर्थंकरों का गुणगान करते हुए श्री एक सौ सत्तर तीर्थंकर विधान की रचना की।

पहले इस विधान में समुच्चय पूजन के साथ ही पाँच मेरु से संबंधित चौंतीस-चौंतीस अर्घ्यों से युक्त छह पूजनें थीं। जिसकारण इसके आयोजन के लिए चार-पाँच दिन के समय की आवश्यकता होती थी। हमने यहाँ उन चौंतीस अर्घ्यों को न रखकर मात्र पूजनों को लिया है, जिससे कि एक ही दिन में श्री एक सौ सत्तर तीर्थंकर विधान का लाभ लिया जा सके।

इस विधान में सिद्धचक्र विधान की शैली का अनुकरण करते हुए भक्ति, अध्यात्म और सिद्धान्त की त्रिवेणी प्रवाहित करने का प्रयास किया गया है। ग्रन्थाधिराज समयसार की कुछ महत्वपूर्ण गाथाओं की अमृतचन्द्राचार्य कृत टीका के भाव जयमाला में भरने का अभिनव प्रयोग करके इस विधान को अध्यात्मरस छलकते हुए कलश का रूप देने का प्रयास किया गया है। आचार्य समन्तभद्र कृत देवागम स्तोत्र के सोलह छन्दों के भाव भरकर न्यायगर्भित स्तुति की परम्परा को भी अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न किया गया है।

विधान के निमित्त से अधिक से अधिक आत्मार्थी भाई-बहिन विशुद्धभावों के माध्यम से आत्मकल्याण करें – यही भावना है।

– परमात्मप्रकाश भारिल्ल (महामंत्री)

पूजा पीठिका (हिन्दी)

ॐ जय जय जय नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु
अरहंतों को नमस्कार है, सिद्धों को सादर वन्दन।
आचार्यों को नमस्कार है, उपाध्याय को है वन्दन।।
और लोक के सर्वसाधुओं को, है विनय सहित वन्दन।
पंच परम परमेष्ठी प्रभु को, बार-बार मेरा वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

वीरछंद

मंगल चार, चार हैं उत्तम, चार शरण में जाऊँ मैं।
मन-वच-काय त्रियोग पूर्वक, शुद्ध भावना भाऊँ मैं।।
श्री अरहंत देव मंगल हैं, श्री सिद्ध प्रभु हैं मंगल।
श्री साधु मुनि मंगल हैं, है केवलि कथित धर्म मंगल।।
श्री अरहंत लोक में उत्तम, सिद्ध लोक में हैं उत्तम।
साधु लोक में उत्तम हैं, है केवलि कथित धर्म उत्तम।।
श्री अरहंत शरण में जाऊँ, सिद्धशरण में मैं जाऊँ।
साधु शरण में जाऊँ, केवलिकथित धर्म शरण जाऊँ।।

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा। पुष्पांजलिं क्षिपेत्

मंगल विधान

अपवित्र हो या पवित्र, जो णमोकार को ध्याता है।
चाहे सुस्थित हो या दुःस्थित, पाप-मुक्त हो जाता है।।१।।
हो पवित्र-अपवित्र दशा, कैसी भी क्यों नहिं हो जन की।
परमातम का ध्यान किये, हो अन्तर-बाहर शुचि उनकी।।२।।
है अजेय विघ्नों का हर्ता, णमोकार यह मंत्र महा।
सब मंगल में प्रथम सुमंगल, श्री जिनवर ने एम कहा।।३।।
सब पापों का है क्षयकारक, मंगल में सबसे पहला।
नमस्कार या णमोकार यह, मन्त्र जिनागम में पहला।।४।।

अर्हं ऐसे परं ब्रह्म–वाचक, अक्षर का ध्यान करूँ।
सिद्धचक्र का सद्बीजाक्षर, मन–वच–काय प्रणाम करूँ।।५।।
अष्टकर्म से रहित मुक्ति–लक्ष्मी के घर श्री सिद्ध नमूँ।
सम्यक्त्वादि गुणों से संयुत, तिन्हें ध्यान धर कर्म वमूँ।।६।।
जिनवर की भक्ति से होते, विघ्न समूह अन्त जानो।
भूत शाकिनी सर्प शांत हों, विष निर्विष होता मानो।।७।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

जिनसहस्रनाम अर्घ्य

मैं प्रशस्त मंगल गानों से, युक्त जिनालय माहिं यजूँ।
जल चंदन अक्षत प्रसून चरु, दीप धूप फल अर्घ्य सजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिनसहस्रनामेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

स्याद्वाद वाणी के नायक, श्री जिन को मैं नमन कराय।
चार अनंत चतुष्टयधारी, तीन जगत के ईश मनाय।।
मूलसंघ के सम्यग्दृष्टि, उनके पुण्य कमावन काज।
करूँ जिनेश्वर की यह पूजा, धन्य भाग्य है मेरा आज।।१।।
तीन लोक के गुरु जिन–पुंगव, महिमा सुन्दर उदित हुई।
सहज प्रकाशमयी दृग्–ज्योति, जग–जन के हित मुदित हुई।।
समवसरण का अद्भुत वैभव, ललित प्रसन्न करी शोभा।
जग–जन का कल्याण करे अरु, क्षेम कुशल हो मन लोभा।।२।।
निर्मल बोध सुधा–सम प्रकटा, स्व–पर विवेक करावनहार।
तीन लोक में प्रथित हुआ जो, वस्तु त्रिजग प्रकटावनहार।।
ऐसा केवलज्ञान करे, कल्याण सभी जगतीतल का।
उसकी पूजा रचूँ आज मैं, कर्म बोझ करने हलका।।३।।
द्रव्य–शुद्धि अरु भाव–शुद्धि, दोनों विधि का अवलंबन कर।
करूँ यथार्थ पुरुष की पूजा, मन–वच–तन एकत्रित कर।।

पुरुष–पुराण जिनेश्वर अर्हन्, एकमात्र वस्तू का स्थान।
उसकी केवलज्ञान वह्नि में, करूँ समस्त पुण्य आह्वान।।४।।

ॐ यज्ञविधिप्रतिज्ञायै जिनप्रतिमाग्रे पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

स्वस्ति मंगलपाठ

ऋषभदेव कल्याणकराय, अजित जिनेश्वर निर्मल थाय।
स्वस्ति करें संभव जिनराय, अभिनंदन के पूजों पाय।।१।।
स्वस्ति करें श्री सुमति जिनेश, पद्मप्रभ पद–पद्म विशेष।
श्री सुपार्श्व स्वस्ति के हेतु, चन्द्रप्रभ जन तारन सेतु।।२।।
पुष्पदंत कल्याण सहाय, शीतल शीतलता प्रकटाय।
श्री श्रेयांस स्वस्ति के श्वेत, वासुपूज्य शिवसाधन हेत।।३।।
विमलनाथ पद विमल कराय, श्री अनंत आनंद बताय।
धर्मनाथ शिव शर्म कराय, शांति विश्व में शांति कराय।।४।।
कुंथु और अरजिन सुखरास, शिवमग में मंगलमय आस।
मल्लि और मुनिसुव्रत देव, सकल कर्मक्षय कारण एव।।५।।
श्री नमि और नेमि जिनराज, करें सुमंगलमय सब काज।
पार्श्वनाथ तेवीसम ईश, महावीर वंदों जगदीश।।६।।
ये सब चौबीसों महाराज, करें भव्यजन मंगल काज।
मैं आयो पूजन के काज, राखो श्री जिन मेरी लाज।।७।।

अहो! देव–गुरु–धर्म तो सर्वोत्कृष्ट पदार्थ हैं, इनके आधार से धर्म है। इनमें शिथिलता रखने से अन्य धर्म किसप्रकार होगा? इसलिए बहुत कहने से क्या? सर्वथा प्रकार से कुदेव–कुगुरु–कुधर्म का त्यागी होना योग्य है।

– मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृष्ठ १९२

ॐ

मंगलाचरण

अनुष्टुप्

मंगलं सिद्ध परमेष्ठी मंगलं तीर्थंकरम्।
मंगलं शुद्ध चैतन्यं आत्मधर्मोऽस्तु मंगलम्।।

वसंततिलका

तीर्थाधिराज तीर्थेश णमोजिणाणं,
अरहंत सप्तरिसयं घनघातिमुक्तम्।
त्रैलोक्य-पूज्य जिनपति सर्वज्ञदेवम्,
ध्यायन्ति सप्ततिशतं जिनवल्लभानाम्।।

दोहा

एक शतक सत्तर हुए, तीर्थंकर भगवान।
ढाईद्वीप के क्षेत्र में, एक संग द्युतिवान।।
अजितनाथ प्रभु के समय, श्री जिनवर तीर्थेश।
निज पुरुषार्थ स्वशक्ति से, हुए सभी सिद्धेश।।
जिन आगम अनुसार ही, पूजूँ सर्व जिनेश।
निर्विकल्प पाऊँ दशा, धारूँ जिनमुनि वेश।।
श्रेष्ठ मंगलाचरण है, तीर्थंकर की भक्ति।
जाग्रत होती हृदय में, मुक्ति प्राप्ति की शक्ति।।
विनय सहित वन्दूँ प्रभो, निरखूँ आत्मस्वरूप।
मैं चैतन्य कुमार हूँ, पूर्ण शुद्ध चिद्रूप।।

पीठिका

वीरछंद

अखिल विश्व में तीन लोक हैं अधो मध्य अरु ऊर्ध्व विशाल।
अधोलोक में नरकादिक हैं ऊर्ध्व लोक स्वर्गादि विशाल।।
त्रिलोकाग्र में सिद्धशिला है जहाँ विराजें सिद्ध अनंत।
तीर्थंकर पद त्याग तीर्थंकर भी होते सिद्ध महंत।।
मध्य लोक में असंख्यात सागर अरु द्वीप असंख्य सुख्यात।

ढाई द्वीप हैं इनमें जिनमें पंच मेरु हैं जग विख्यात।।
मेरु सुदर्शन विजय अचल मंदर विद्युन्माली सुखकार।
पैंतालीस लाख योजन है ढाई द्वीप का शुभ विस्तार।।
ढाई द्वीप में एक शतक बत्तीस सूर्य होते गतिमान।
एक शतक बत्तीस चंद्र हैं दिव्य प्रभा से शोभावान।।
ढाई द्वीप तक मनुज क्षेत्र है कर्म भूमि संयुक्त प्रधान।
फिर है मानुषोत्तर पर्वत मनुज नहीं आगे गतिमान।।
पंच भरत अरु पंचैरावत ये दस क्षेत्र प्रसिद्ध प्रधान।
आर्यखंड में कर्मभूमियाँ एक शतक सत्तर छविमान।।
इन क्षेत्रों में एक शतक सत्तर तीर्थंकर हों प्रख्यात।
किन्तु बीस तीर्थंकर स्वामी विद्यमान रहते विख्यात।।
सीमंधर, युगमंधर, बाहु, सुबाहु, सुजात, स्वयंप्रभ देव।
ऋषभानन, अनंतवीर्य, सूर्यप्रभ, विशालकीर्ति सुदेव।।
श्री वज्रधर चंद्रानन प्रभु चंद्रबाहु भुजंगम ईश।
जयति ईश्वर, जयति नेमिप्रभु वीरसेन, महाभद्र, महीश।।
पूज्य यशोधर, अजितवीर्य, जिन बीस जिनेश्वर परम महान।
विचरण करते हैं विदेह में शाश्वत तीर्थंकर भगवान।।
कल्पकाल बहु जाने पर ही एक समय ऐसा आता।
एक शतक सत्तर तीर्थंकर चरण पूज जग हरषाता।।
नाम नहीं उपलब्ध सभी के बिना नाम ही करूँ प्रणाम।
हुए ज्ञानमय एक साथ जो विनय सहित वन्दूँ वसु याम।।
वर्तमान जिन चौबीसी के अजितनाथ जिन प्रभु के काल।
एक शतक सत्तर तीर्थंकर एक साथ हो चुके विशाल।।
एक साथ इतने तीर्थंकर कभी कभी ही होते हैं।
महाभाग्य उनका जगता जिनके सन्मुख ये होते हैं।।
इनके समवसरण में द्वादश सभा मध्य अनगिनती जीव।
दिव्यध्वनि सुन निज हित करते हर्षित होते भव्य सदीव।।

ये सब आर्य खण्ड कहलाते कर्मभूमियों सहित प्रसिद्ध।
जिन तीर्थंकर होते रहते आत्मशक्ति से अविचल सिद्ध।।
सर्वोत्तम यश प्रकृति तीर्थंकर का भी प्रभु करते नाश।
निज सिद्धत्व प्रकटकर सब ही पाते सिद्धलोक आवास।।
भूत भविष्यत् वर्तमान के तीर्थंकर अनंत वन्दूँ।
सिद्धचक्र राजित सिद्धों को विनयपूर्वक अभिनन्दूँ।।
इन सबकी पूजन करने का भाव हृदय में जागा आज।
जिनदर्शन करते ही मानो मिथ्याभ्रम का रहा न राज।।
सिद्धों के गुण गाते-गाते पुलकित है अब मेरा गात।
जीवन में सुख-शान्ति प्राप्त हो, यही चाहता मैं सौगात।।
इन सबको वंदन करता हूँ, विनय भक्ति से भली प्रकार।
मिथ्यातम हर समकित पाऊँ, संयम धर होऊँ भवपार।।

दोहा

एक शतक सत्तर नमूँ, तीर्थंकर भगवान।
आत्मशक्ति के तेज से, पाऊँ पद निर्वाण।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

मैं महा-पुण्य उदय से जिन-धर्म पा गया।।टेक।।
चार घाति कर्म नाशे, ऐसे अरहंत हैं।
अनन्त चतुष्टय धारी, श्री भगवन्त हैं।।
मैं अरहंत देव की शरण आ गया।।मैं.।।
अष्ट कर्म नाश किये, ऐसे सिद्ध-देव हैं।
अष्ट गुण प्रकट जिनके, हुए स्वयमेव हैं।।
मैं ऐसे सिद्ध देव की शरण आ गया।।मैं.।।
वस्तु का स्वरूप बताये, वीतराग-वाणी है।
तीन लोक के जीव हेतु, महाकल्याणी है।।
मैं जिनवाणी माँ की शरण आ गया।।मैं.।।
परिग्रह रहित, दिगम्बर मुनिराज हैं।
ज्ञान-ध्यान सिवा नहीं, दूजा कोई काज है।।
मैं श्री मुनिराज की शरण आ गया।।मैं.।।

समुच्चय पूजन

चान्द्रायण

ढाई द्वीप में एक शतक सत्तर जिनेश।
एक साथ हो चुके आज पूजूँ महेश।।
सर्व जिनेश्वर पूजूँ स्वामी शक्ति से।
तीर्थंकर सब वन्दूँ निर्मल भक्ति से।।

दोहा

आह्वानन करता प्रभो, हृदय विराजो आज।
रत्नत्रय निधि दो मुझे, तीर्थंकर जिनराज।।
अहो! अत्र अवतर विभो! अत्र तिष्ठ हे नाथ।
भक्तिभाव रंग में रँगा, तजूँ न तुव पद साथ।।

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ पंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतक-सत्तरतीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ पंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतक-सत्तरतीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ पंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतक-सत्तरतीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

गीतिका

चैतन्यवत् निर्मल सलिल, जिनचरण में अर्पित करूँ।
ज्ञान सम्यक् प्राप्त करके जन्म मृत्यु जरा हरूँ।।
एक शत सत्तर जिनेश्वर की करूँ मैं वन्दना।
पूज्य-पूजक की रहे नहिं, भेद की भी वासना।।

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थपंचमेरु विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतकसत्तर-तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य चन्दन विटप पर हैं सर्प लिपटे मोह के।
जिन मयूरी ध्वनि सुनी तो भाग जाते द्रोह से।।
एक शत सत्तर जिनेश्वर की करूँ मैं वन्दना।
पूज्य-पूजक की रहे नहिं, भेद की भी वासना।।

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ पंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतक-सत्तरतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य का वैभव अखंडित वही अक्षय पद महा।
स्वानुभव की स्वरसधारा शिव विधायक है अहा।।
एक शत सत्तर जिनेश्वर की करूँ मैं वन्दना।
पूज्य-पूजक की रहे नहिं, भेद की भी वासना।।

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थपंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतक-सत्तरतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य सुमनों की सुरभि से काम-शुत्र विनाशते।
वासना की सर्पिणी को एक क्षण में नाशते।।
एक शत सत्तर जिनेश्वर की करूँ मैं वन्दना।
पूज्य-पूजक की रहे नहिं, भेद की भी वासना।।

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ पंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतक-सत्तरतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य चिन्तामणि महाचरु परम शिवमय शान्ति कर।
प्राणियों को सिद्धनन्दन बनाता भवभ्रान्ति हर।।
एक शत सत्तर जिनेश्वर की करूँ मैं वन्दना।
पूज्य-पूजक की रहे नहिं, भेद की भी वासना।।

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ पंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतक-सत्तरतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य की चिन्मय चमक अरु मोहतम की कालिमा।
भिन्नता के भान से प्रकटी चिदातम लालिमा।।

एक शत सत्तर जिनेश्वर की करूँ मैं वन्दना।
पूज्य-पूजक की रहे नहिं, भेद की भी वासना।।

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ पंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतक-सत्तरतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य की ध्यानाग्नि में कर्म ईंधन जल रहा।
शुद्धात्मा के आश्रय से भाव निर्मल पल रहा।।
एक शत सत्तर जिनेश्वर की करूँ मैं वन्दना।
पूज्य-पूजक की रहे नहिं, भेद की भी वासना।।

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ पंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतक-सत्तरतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य तरु की शाख पर फल रत्नत्रय के फल रहे।
मुक्तिफल भी सहज फलता ज्ञान-आनंद रस बहे।।
एक शत सत्तर जिनेश्वर की करूँ मैं वन्दना।
पूज्य-पूजक की रहे नहिं, भेद की भी वासना।।

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ पंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतक-सत्तरतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य का वैभव महा अनर्घ्यमय अनमोल है।
पुण्य के आधीन वैभव का करूँ क्या मोल है।।
एक शत सत्तर जिनेश्वर की करूँ मैं वन्दना।
पूज्य-पूजक की रहे नहिं, भेद की भी वासना।।

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ पंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतक-सत्तरतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

करें आप्त मीमांसा, समन्तभद्राचार्य।
प्रस्तुत है अनुवाद यह, भविजन को हितकार[१]।।

१. यह जयमाला देवागम स्तोत्र के सोलह छन्दों का हिंदी पद्यानुवाद है।

वीरछंद

देवागमन तथा नभ में गति, छत्र चँवर अनुपम छविमान।
मायावी जन में भी दिखते, मात्र इसलिए नहीं महान।।१।।
बाह्यान्तर अतिशय तन के भी, देवों में देखे जाते।
इसीलिए प्रभु इस वैभव से, नहीं पूज्यता को पाते।।२।।
आगम के आधार तथा, जो धर्मतीर्थ के संचालक।
उनमें है विरोध, आप्त सब नहीं, एक हो प्रतिपालक।।३।।
दोष और आवरण हानि अतिशायन हेतु दिखलाता।
अन्तर्बाह्य मलक्षय भी है, ध्यान-अग्नि से हो जाता[१]।।४।।
सूक्ष्म और दूरस्थ अन्तरित, विशद ज्ञानवर्ती होते।
हैं अनुमेय यथा अग्न्यादि, अतः सर्वज्ञ सिद्ध होते।।५।।
युक्ति-शास्त्र अविरोधी वचनों से हे जिन! तुम ही हो निर्दोष।
तुम्हें इष्ट जो वह अविरोधी, प्रत्यक्षादि न देते दोष।।६।।
प्रभु के मत-अमृत से बाहर जो एकान्त सर्वथा वाद।
अरे! दग्ध आप्ताभिमान से, इष्ट तत्त्व जो उसमें बाध।।७।।
एकान्तों के आग्रह से जो ग्रस्त स्व-पर के बैरी हैं।
कर्म शुभाशुभ अपुनर्भव की अव्यवस्था अति गहरी है।।८।।
वस्तु यदि एकान्त भावमय, हो अभाव नहिं किंचित् भी।
सब सर्वात्मक, अस्वरूपी, बिन आदि अन्त, स्वीकार नहीं।।९।।
यदि नहिं मानें प्राग्भाव तो, कार्यारम्भ नहीं होगा।
यदि प्रध्वंस-अभाव न मानें, अन्त कार्य का नहिं होगा।।१०।।
यदि अन्योन्याभाव न हो तो एकरूप हों सब पुद्गल।
यदि अत्यन्ताभाव न मानें, सर्व द्रव्य सबमय तिहुँकाल।।११।।
यदि अभाव सर्वथा वस्तु का, भावों का सर्वथा निषेध।
अप्रामाणिक हों ज्ञान-वचन, निज-पर मण्डन-खण्डन कैसे?।।१२।।

१. रागादिदोषों व ज्ञानावरणादि की हीनता से उनके क्षय का अनुमान अतिशायन हेतु से होता है।

द्वय एकान्तों में विरोध है, स्याद्वाद विद्वेषी के।
यदि सर्वथा अवाच्य कहें तो वस्तु वाच्य इस वाणी से।।१३।।
तुम्हें इष्ट है वस्तु कथंचित् सत्ता और असत्ता रूप।
उभय कथंचित् नय पद्धति से, नहीं सर्वथा वस्तु स्वरूप।।१४।।
द्रव्य, क्षेत्र, निज काल, भाव से, सत् पदार्थ नहिं माने कौन।
और असत् पर द्रव्य आदि से नहिं मानें अव्यवस्थित भौन।।१५।।
यदि क्रम से कहना चाहें तो वस्तुरूप है भाव-अभाव।
अक्रम से है अवक्तव्य यह, शेष भंग स्वापेक्ष स्वभाव।।१६।।

सोरठा

अनेकान्तमय वस्तु, कहते हैं जिनराज सब।
सद्धर्म-वृद्धिरस्तु, इसके सम्यग्ज्ञान से।।

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थपंचमेरुसम्बन्धी विदेह एवं भरतैरावतसम्बन्धी एकशतक-सत्तरतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मनोरथ पूर्ति

यह बात जुदी है कि पंचपरमेष्ठी के निष्काम उपासकों को भी सातिशय पुण्यबंध होने से लौकिक अनुकूलतायें भी स्वतः मिलती देखी जाती हैं तथा वे उन अनुकूलताओं एवं सुख-सुविधाओं को स्वीकार करते हुए, उनका उपभोग करते हुए भी देखे जाते हैं; किन्तु सहज प्राप्त उपलब्धियों को स्वीकार करना अलग बात है और उनकी कामना करना अलग बात। दोनों में जमीन-आसमान का अन्तर है।

आतिथ्य-सत्कार में नाना मिष्ठान्नों का प्राप्त होना और उन्हें सहज स्वीकार कर लेना जुदी बात है और उनकी याचना करना जुदी बात है। दोनों को एक नजर से नहीं देखा जा सकता। ज्ञानी अपनी वर्तमान पुरुषार्थ की कमी के कारण पुण्योदय से प्राप्त अनुकूलता के साथ समझौता तो सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु वे पुण्य के फल की भीख भगवान से नहीं माँगते।

ह्न णमोकार महामंत्र, पृष्ठ ७४

1

श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरु सम्बन्धी

चौंतीस तीर्थंकर पूजन

स्थापना

वीरछंद

जम्बूद्वीप सुमेरु, सुदर्शन, सम्बन्धी जिनवर चौंतीस।
सादर सविनय अष्ट द्रव्य से, पूजन करूँ झुकाऊँ शीश।।
सोलह पूर्व विदेह और सोलह पश्चिम विदेह जिन ईश।
इक उत्तर ऐरावत अरु इक दक्षिण भरत विगत जगदीश।।
धर्म मार्ग पर प्रयाण करके, आत्मोत्पन्न सौख्य पाऊँ।
सम्यग्दर्शन का बल लेकर, सिद्ध स्वपद निज प्रकटाऊँ।।
आओ श्री जिनराज पधारो मम परिणति में लो अवतार।
निज को निज, पर को पर जानूँ, शुद्धातम का लूँ आधार।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

भुजंगप्रयात

निजातम की महिमामय जलपान करके
संयम की तरणी का लें अब सहारा।
इसी एक तरणी ने अब तक अनंतों,
सुभव्यों को भवोदधि पार उतारा।।

सुमेरु सुदर्शन के चौंतीस जिनवर,
परम ज्ञानपति के चरण मैं पखारूँ।।
महामोह मिथ्यात्वमल को विनाशूँ,
निज को चिदानन्द चिन्मय निहारूँ।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थसुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निजातम की महिमामय चन्दन लगाया,
विषय-भोग का ताप अब नष्ट होगा।।
संयम सुधा का रसपान कर लें,
हमें फिर न कोई कभी कष्ट होगा।।
सुमेरु सुदर्शन के चौंतीस जिनवर,
परम ज्ञानपति के चरण मैं पखारूँ।।
महामोह मिथ्यात्वमल को विनाशूँ,
निज को चिदानन्द चिन्मय निहारूँ।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थसुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

निजातम की महिमामय अक्षत अनूठे,
मुझे तार देंगे जगत के दुखों से।
अनन्ते गुणों में अखण्डित चिदातम,
सुशोभित होता अनन्त सुखों से।।
सुमेरु सुदर्शन के चौंतीस जिनवर,
परम ज्ञानपति के चरण मैं पखारूँ।।
महामोह मिथ्यात्वमल को विनाशूँ,
निज को चिदानन्द चिन्मय निहारूँ।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थसुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निजातम की महिमामय सुरभित सुमन से,
कभी कामबाणों की पीड़ा न होगी।
स्वपद पूर्ण निष्काम होगा हृदय में,
विभावों की कोई भी क्रीड़ा न होगी।।
सुमेरु सुदर्शन के चौंतीस जिनवर,
परम ज्ञानपति के चरण मैं पखारूँ।।
महामोह मिथ्यात्वमल को विनाशूँ,
निज को चिदानन्द चिन्मय निहारूँ।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थसुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निजातम की महिमामय चरु को चखूँ मैं,
क्षुधावेदना क्षीण होगी निमिष में।
अतीन्द्रिय आनन्द रसास्वादन लेकर,
नहीं लीन होऊँ मैं विषयों के विष में।।
सुमेरु सुदर्शन के चौंतीस जिनवर,
परम ज्ञानपति के चरण मैं पखारूँ।।
महामोह मिथ्यात्वमल को विनाशूँ,
निज को चिदानन्द चिन्मय निहारूँ।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थसुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निजातम की महिमामय दीपक जलाया,
महामोहतम शीघ्र विध्वंस होगा।।
स्वयं ज्ञान-ज्योति है व्यापी जगत में,
अतीन्द्रिय आनन्द का अंश होगा।।
सुमेरु सुदर्शन के चौंतीस जिनवर,

परम ज्ञानपति के चरण मैं पखारूँ।।
महामोह मिथ्यात्वमल को विनाशूँ,
निज को चिदानन्द चिन्मय निहारूँ।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थसुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

निजातम की महिमामय अनुपम अनल में,
जले धूप अष्टांग कर्मों की पल में।
नहीं होंगे घाति-अघाति कहीं भी,
उन्हें भेज दूँ मैं रसातल के तल में।।
सुमेरु सुदर्शन के चौंतीस जिनवर,
परम ज्ञानपति के चरण मैं पखारूँ।।
महामोह मिथ्यात्वमल को विनाशूँ,
निज को चिदानन्द चिन्मय निहारूँ।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थसुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निजातम की महिमामय स्वाधीन तरु पर,
महामोक्षफल काललब्धि में फलता।
स्वसन्मुख पुरुषार्थ होता सहज ही,
सहज में ही अनुकूल निमित्त मिलता।।
सुमेरु सुदर्शन के चौंतीस जिनवर,
परम ज्ञानपति के चरण मैं पखारूँ।।
महामोह मिथ्यात्वमल को विनाशूँ,
निज को चिदानन्द चिन्मय निहारूँ।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थसुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निजातम की महिमामय अर्घ्य सजाया,
पाया अनन्ते गुणों का सुमेला।
अतीन्द्रिय अन्-अर्घ्य वैभव को पाकर,
सिद्ध समूह में रहूँगा अकेला।।
सुमेरु सुदर्शन के चौंतीस जिनवर,
परम ज्ञानपति के चरण मैं पखारूँ।।
महामोह मिथ्यात्वमल को विनाशूँ,
निज को चिदानन्द चिन्मय निहारूँ।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थसुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

निजस्वभाव को जानकर, करूँ सहज पुरुषार्थ।
मिले निमित्त स्वकाल में, प्रकट होय परमार्थ।।

हरिगीतिका

क्षयोपशम से तत्त्वज्ञान विशुद्ध भावों से करूँ।
देशना झेलूँ प्रभू की आतमा को अब वरूँ।।
भाव हो प्रायोग्यमय तो करणलब्धि पथ बढ़ूँ।
एकत्व ज्ञायक भाव में सम्यक्त्व निधि को अब वरूँ।।

ध्रुव त्रिकाली आत्मा की त्वरित अंतर खोजकर।
लक्ष्य में लूँ फिर त्रिकाली ध्रुव हृदय में ओजभर।।
आत्महित का लक्ष्य मेरा सभी त्याग कषायरस।
पूर्णता का लक्ष्य लूँ मैं पी महान स्वभाव रस।।

ज्ञानमय यदि परिणमन है, तो सुनिश्चित सिद्धपद।
अज्ञानमय यदि परिणमन है, तो सुनिश्चित है कुपद।।

भिन्न-भिन्न प्रकार की मैं कल्पना में लीन हूँ।
बहिर्भावों से दुखी हूँ नहीं मैं स्वाधीन हूँ।।

आत्मार्थी जीव पीता, आत्मरस यदि चाव से।
दृष्टि में हो त्रिकाली ध्रुव शुद्ध निर्मल भाव से।।

त्याग सर्व विभावरस को अब पियूँ चैतन्यरस।
निर्विकल्प दशा मिली तो तज दिया सविकल्प रस।

पापरस क्षय हो चुका है, पुण्य का भी रस नहीं।
अब मुझे संकल्प और विकल्प में भी रस नहीं।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपस्थ-सुदर्शनमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

एक शतक सत्तर जिनेश को ध्याइये,
उनकी गौरव गाथा सुन हरषाइये।
जिनपूजन आनंदमयी शिवदाय है,
आत्मतत्त्व का दर्शन ही सुखदाय है।
मोहशत्रु का नाश करूँ निजभाव से,
पाऊँ निजपद राज विशुद्ध स्वभाव से।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

देवाधिदेव अरहंत के चरणों का पूजन समस्त दुःखों का नाश करनेवाला है तथा इन्द्रियों के विषयों की कामना का नाश करके मोक्षरूप सुख की कामना को पूर्ण करनेवाला है; इसलिए अन्य की आराधना छोड़कर जिनेन्द्रदेव की ही नित्य आराधना करो।

– पण्डित सदासुखदासजी : रत्नकरण्ड श्रावकाचार टीका, पृष्ठ 205

२
पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरु सम्बन्धी चौंतीस तीर्थंकर पूजन
स्थापना

वीरछंद

खण्ड धातकी विजयमेरु पूरब का क्षेत्र विदेह प्रसिद्ध।
सोलह-सोलह पूर्व और पश्चिम तीर्थंकर जिन सुप्रसिद्ध।।
इक ऐरावत उत्तर-दक्षिण भरत एक सब मिल चौंतीस।
सादर सविनय अष्ट-द्रव्य ले पूजन करूँ झुकाऊँ शीश।।

ज्ञानमार्ग पर गमन करूँ मैं, आत्मोत्पन्न सौख्य पाऊँ।
भेद-ज्ञान का दीप जलाकर चेतनज्योति विकसाऊँ।।
आओ श्री जिनराज पधारो मम परिणति में लो अवतार।
नय-प्रमाण से निज को जानूँ निर्विकल्प आनन्द अपार।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्राः अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्राः अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्राः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

विजया

ज्ञान में मोह की है मलिनता दिखी,
भेद-विज्ञान से उसको पर जानकर।
शुद्ध चैतन्य सन्मुख उपयोग से,
मोह मल का प्रभो! आज प्रक्षाल कर।।
हे जिनेश्वर तुम्हें आज वन्दन करूँ,
नष्ट होवे सभी कर्म की कालिमा।

शुद्ध चैतन्य का अभिनन्दन करूँ,
आत्म-अनुभव की होवे प्रकट लालिमा।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान में ज्ञेय की गन्ध आयी नहीं,
मोह दुर्गन्ध से क्यों मैं पीड़ित हुआ?
शुद्ध चैतन्य की गन्ध में मस्त हो,
आज उपयोग निज में ही कीलित हुआ।।
हे जिनेश्वर तुम्हें आज वन्दन करूँ,
नष्ट होवे सभी कर्म की कालिमा।
शुद्ध चैतन्य का अभिनन्दन करूँ,
आत्म-अनुभव की होवे प्रकट लालिमा।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञेय आकार से ज्ञान खण्डित नहीं,
जान ली आज महिमा अखण्ड ज्ञान की।
द्रव्य गुण और पर्याय में व्याप्त जो,
निज की सत्ता अखण्डित पहचान ली।।
हे जिनेश्वर तुम्हें आज वन्दन करूँ,
नष्ट होवे सभी कर्म की कालिमा।
शुद्ध चैतन्य का अभिनन्दन करूँ,
आत्म-अनुभव की होवे प्रकट लालिमा।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान के पुष्प चैतन्य सर में खिले,
काम की कीच में भी कमल ज्ञान का।
वासना शूल से भी कमल भिन्न जो,
आज महका सुमन भेद-विज्ञान का।।

हे जिनेश्वर तुम्हें आज वन्दन करूँ,
नष्ट होवे सभी कर्म की कालिमा।
शुद्ध चैतन्य का अभिनन्दन करूँ,
आत्म-अनुभव की होवे प्रकट लालिमा।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यः कामबाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान का रस अतीन्द्रिय सुहाया मुझे,
ज्ञेय की लुब्धता का हुआ है शमन।
शुद्ध चैतन्य रस लीन उपयोग से,
पूर्ण तृप्त हुआ है प्रभो! आज मन।।
हे जिनेश्वर तुम्हें आज वन्दन करूँ,
नष्ट होवे सभी कर्म की कालिमा।
शुद्ध चैतन्य का अभिनन्दन करूँ,
आत्म-अनुभव की होवे प्रकट लालिमा।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान में ज्ञान को ज्ञान जाने नहीं,
कौन कहता उसे ज्ञान की बानगी।
ज्ञान में जो समर्पित है ज्ञेयावली,
घोषणा ही करे ज्ञान सामान्य की।।
हे जिनेश्वर तुम्हें आज वन्दन करूँ,
नष्ट होवे सभी कर्म की कालिमा।
शुद्ध चैतन्य का अभिनन्दन करूँ,
आत्म-अनुभव की होवे प्रकट लालिमा।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान की तेजमय प्रज्वलित हो अनल,
कर्म-ईंधन जलाऊँ प्रभो आज मैं।

मोह की राजधानी हुई भस्म अब,
शुद्ध चैतन्य का हो तिलकराज अब।।
हे जिनेश्वर तुम्हें आज वन्दन करूँ,
नष्ट होवे सभी कर्म की कालिमा।
शुद्ध चैतन्य का अभिनन्दन करूँ,
आत्म-अनुभव की होवे प्रकट लालिमा।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान में ज्ञान का स्वाद जाना नहीं,
ज्ञेय मिश्रित चखा आज तक ज्ञानफल।
शुद्ध चैतन्य तरु का अतीन्द्रिय सुफल,
है फला हे प्रभो! ज्ञान की शाख पर।।
हे जिनेश्वर तुम्हें आज वन्दन करूँ,
नष्ट होवे सभी कर्म की कालिमा।
शुद्ध चैतन्य का अभिनन्दन करूँ,
आत्म-अनुभव की होवे प्रकट लालिमा।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध आतम का वैभव अनमोल है,
क्या करेगा जगत मूल्य इसका प्रभो।
है समर्पित विभूति सभी पुण्य की,
शुद्ध चैतन्य का क्या करें तोल है।।
हे जिनेश्वर तुम्हें आज वन्दन करूँ,
नष्ट होवे सभी कर्म की कालिमा।
शुद्ध चैतन्य का अभिनन्दन करूँ,
आत्म-अनुभव की होवे प्रकट लालिमा।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला*

दोहा

लखूँ अबद्धस्पृष्ट निज, अरु अनन्य अविशेष।
देखूँ जिनशासन अहो! द्रव्य-भाव सुविशेष।।
अनुभूति लक्षण यही, ज्ञान ज्ञान को जान।
अन्तर्मुख उपयोग में, प्रकटे सम्यग्ज्ञान।।

मानव

शुद्धात्म तत्त्व का अनुभव, है जिन-शासन का वेदन।
श्रुतज्ञान स्वयं आतम है, जिसका लक्षण है चेतन।।
जब ज्ञानमात्र का अनुभव परिणति में लहराता है।
ज्ञेयाकारों का मुझको तब तिरोभाव भाता है।।
जो ज्ञेयासक्त हुए हैं नहिं स्वाद ज्ञान का जानें।
बह रही ज्ञान की धारा पर वे न उसे पहिचानें।।
व्यंजन में लवण मिला है, व्यंजन को खारा जाने।
है स्वादलुब्ध वह प्राणी खारापन लवण न माने।।
सामान्य लवण है जैसा, व्यंजन मिश्रित है वैसा।
जो मुख्य दृष्टि में होता वेदन में आता वैसा।।
ज्ञेयाकारों के मिश्रण में तिरोभाव चेतन का।
तब ज्ञेयमात्र अनुभवता, है स्वादलुब्ध आतम का।।
जब ज्ञान मात्र पर दृष्टि ज्ञानी की है जम जाती।
तब स्वाद ज्ञान का आता परिणति निज में रम जाती।।
सामान्य ज्ञान का होता है आविर्भाव निराला।
हूँ एकाकार अखण्डित मैं चेतन लक्षण वाला।।
ज्ञेयाकारों में भी है बस ज्ञान मात्र का नर्तन।
सामान्य ज्ञान के ही हैं, ये ज्ञेयाकार विवर्तन।।
जो ज्ञेयलुब्ध होते वे, नहिं स्वाद ज्ञान का जानें।

* यह जयमाला समयसार, गाथा १५ की आत्मख्याति टीका का भावानुवाद है।

जो ज्ञानमात्र अपनाते विज्ञानघनत्व पिछानें।।
जो अपने से अनजाने वे ज्ञेयलुब्ध रहते हैं।
बस, इन्द्रिय-ज्ञान विषय में वे सदा मुग्ध रहते हैं।।
मैं ज्ञान ज्ञेय मैं ज्ञायक, हो यह अखण्ड परतीति।
बस, एकाकार चिदातम की हो प्रचण्ड अनुभूति।।
यह ज्ञानमात्र आतम की अनुभूति ज्ञानमय जानो।
ज्ञानानुभूति ही शिवमय आत्मानुभूति ही मानो।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वधातकीखण्डद्वीपस्थ विजयमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

एक शतक सत्तर जिनेश को ध्याइये।
उनकी गौरव गाथा सुन हरषाइये।।
जिनपूजन आनन्दमयी शिवदाय है।
आत्मतत्त्व का दर्शन ही सुखदाय है।।
मोहशत्रु का नाश करूँ निजभाव से।
पाऊँ निज पद राज विशुद्ध स्वभाव से।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

आज हम जिनराज तुम्हारे द्वारे आये।
हाँ जी हाँ हम आये आये।।टेक।।
देखे देव जगत के सारे, एक नहीं मन भाये।
पुण्य-उदय से आज तिहारे, दर्शन कर सुख पाये।।1।।
जन्म-मरण नित करते-करते, काल अनन्त गमाये।
अब तो स्वामी जन्म-मरण का, दुखड़ा सहा न जाये।।2।।
भव-सागर में नाव हमारी, कब से गोता खाये।
तुम ही स्वामी हाथ बढ़ाकर, तारो तो तिर जाये।।3।।
अनुकम्पा हो जाय आपकी, आकुलता मिट जाये।
'पंकज' की प्रभु यही बीनती, चरण-शरण मिल जाये।।4।।

३

पश्चिम धातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरु सम्बन्धी

चौंतीस तीर्थंकर पूजन

स्थापना

वीरछंद

खण्ड धातकी अचलमेरु पश्चिम सम्बन्धी क्षेत्र विदेह।
सोलह सोलह पूरब पश्चिम, तीर्थंकर वन्दूँ धर नेह।।
इक ऐरावत उत्तर दक्षिण, भरत एक सब मिल चौंतीस।
सादर सविनय अष्ट द्रव्य ले, पूजन करूँ झुकाऊँ शीश।।
निज स्वरूप में लीन रहूँ प्रभु सम्यक् चारित्र प्रकटाऊँ।
मोह-क्षोभ से रहित शुद्ध परिणतिमय समता उर लाऊँ।।
आओ श्री जिनराज पधारो मम परिणति में लो अवतार।
सर्व कषाय विनष्ट करूँ मैं पहुँचूँ मोक्षनगर के द्वार।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्राः तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

रोला

चिदानन्द निज भावों का आह्वान करूँ मैं।
इस क्षण ही सब कर्म शत्रु अवसान करूँ मैं।।
पूजन कर सम्यक् शीतलता उर में आयी।
अचलमेरु चौंतीसों जिन प्रभु मंगलदायी।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

संयोगों को इष्ट-अनिष्ट सदा माना है।
निज की अरुचि भाव से पर का दीवाना है।।
निज की रुचि से आज क्रोध का किया शमन है।
चौंतीसों जिनराज चरण में सदा नमन है।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

संयोगों से किया सदा अपना मूल्यांकन।
परभावों से क्षत-विक्षत होता यह चेतन।।
निज को जिन-सम मान आज यह गौरव पाया।
चौंतीसों जिनराज भजूँ अब चित हरषाया।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

संयोगों की मधुमाया में मस्त हुआ हूँ।
पर में सुख की रही वासना, त्रस्त हुआ हूँ।।
मैं अनन्त सुख का स्वामी यह लख हरषाया।
चौंतीसों जिनराज चरण में शीश झुकाया।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

परद्रव्यों का लोभ जगत में भरमाता है।
किन्तु जीव परभावों में दुःख ही पाता है।।
पर से हो निरपेक्ष प्रभू! निज को अब ध्याऊँ।
चौंतीसों जिनराज चरण में शीश झुकाऊँ ।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अनन्तानुबंधी तम में निज-पर नहिं जाना।
भेद-ज्ञान का दीप जला निज को पहचाना।।
प्रकट हुई चैतन्य-ज्योति परिणति में छायी।
चौंतीसों जिनराज सुछवि अब मुझको भायी।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ध्यान-अनल मैं दग्ध अप्रत्याख्यानावरणी।
संयम की फैले सुगंध सार्थक सब करनी।।
निज में लीन रहूँ तब बहती आनन्दधारा।
चौंतीसों जिनराज चरण में नमन हमारा।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्याख्यानावरणी क्षयकर मुनि बन जाऊँ।
निर्ग्रन्थों का पथ अपना कर शिवफल पाऊँ।।
गुण अनन्तमय निज स्वभाव में सदा रमूँ मैं।
चौंतीसों जिनराज चरण में सदा नमूँ मैं।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्वलन संज्वलन शमन करूँ यह अर्घ्य चढ़ाऊँ।
यथाख्यात चारित्र सुपथ पर चरण बढ़ाऊँ।।
क्षीण मोह हो प्रभुवर यही भावना भाऊँ।
चौंतीसों जिनराज निरंतर उर में ध्याऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

गीतिका

आत्मा में सावधानी है वही निर्बन्ध है।
देह में हो सावधानी उसे ही भवबंध है।।
श्रुत श्रवण जिसको नहीं वो उदय में ही मग्न है।
भाव श्रुत जिसको हुआ वो आत्मा में मग्न है।।
भाव भासना के बिना समभाव होता ही नहीं।

मैं विकारी भाव का अब तक अभाव न कर सका।।
देह अरु चैतन्य में भी भेदज्ञान न कर सका।
ज्ञान की उज्ज्वल कला का मैं न आदर कर सका।।
परिणमन विपरीत मेरा अधोगति ले जाएगा।
अर्हन्त की तो बात क्या संज्ञी न बनने पाएगा।।
ध्रुव त्रिकाली आत्मा को जानकर अरु ध्यान कर।
पूर्णता का लक्ष्य ले, प्रारम्भ आज महान कर।।
हो न अंश विभाव का तो आत्मरस से ओतप्रोत।
सिंह जैसी गर्जना कर ज्ञान का खुल जाए स्रोत।।
विकल्पों की धधकती भट्टी अभी मैं दूँ बुझा।
बार-बार उपाय अनुपम गुरु रहे कब से सुझा।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमधातकीखण्डद्वीपस्थ अचलमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

एक शतक सत्तर जिनेश को ध्याइये।
उनकी गौरव गाथा सुन हर्षाइये।।
जिनपूजन आनंदमयी शिवदाय है।
आत्मतत्त्व का दर्शन ही सुखदाय है।।
मोहशत्रु का नाश करूँ निज भाव से।
पाऊँ निज पद राज विशुद्ध स्वभाव से।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

अरहन्त के प्रतिबिम्ब का वचन द्वार से स्तवन करना, नमस्कार करना, तीन प्रदक्षिणा देना, अंजुलि मस्तक चढ़ाना, जल-चन्दनादिक अष्ट द्रव्य चढ़ाना; सो द्रव्यपूजा है। अरहंत के गुणों में एकाग्र चित्त होकर, अन्य समस्त विकल्प-जाल छोड़कर गुणों में अनुरागी होना तथा अरहंत के प्रतिबिम्ब का ध्यान करना; सो भाव पूजा है।

४
पूर्व पुष्करार्ध द्वीपस्थ मंदरमेरु सम्बन्धी
चौंतीस तीर्थंकर पूजन

स्थापना

पुष्करार्ध की पूर्व दिशा में मंदरमेरु महान प्रसिद्ध।
पूर्व और पश्चिम विदेह के, सोलह-सोलह जिन सुप्रसिद्ध।।
इक ऐरावत उत्तर-दक्षिण भरत, एक सब मिल चौंतीस।
सादर सविनय अष्ट द्रव्य ले पूजन करूँ झुकाऊँ शीश।।
मुक्ति मार्ग पर प्रयाण करके, आत्मोत्पन्न सौख्य पाऊँ।
रत्नत्रय का ही बल लेकर, सिद्ध स्वपद निज प्रकटाऊँ।।
आओ श्री जिनराज पधारो मम परिणति में लो अवतार।
दर्शन ज्ञान चरित्र कला से हो जाऊँ भवसागर पार।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

अवतार

रत्नत्रय निर्मल नीर मिथ्यामल धोता।
नाशूँ भव-भव की पीर मैं निर्मल होता।।
हे वीतराग सर्वज्ञ तुम्हारा अभिनन्दन।
चौंतीसों अतिशय युक्त जिनवर को वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय की शुभ गन्ध, महकी जीवन में।
निज शीतल चेतन चन्द्र भाया अब मन में।।
हे वीतराग सर्वज्ञ तुम्हारा अभिनन्दन।
चौंतीसों अतिशय युक्त जिनवर को वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

निज एक अखण्ड स्वभाव चेतन है पूरा।
रत्नत्रय अक्षत आज पर-आश्रय चूरा।।
हे वीतराग सर्वज्ञ तुम्हारा अभिनन्दन।
चौंतीसों अतिशय युक्त जिनवर को वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

चेतन उपवन में आज रत्नत्रय महका।
प्रभु! काम कलंक विनाश कर जीवन चहका।।
हे वीतराग सर्वज्ञ तुम्हारा अभिनन्दन।
चौंतीसों अतिशय युक्त जिनवर को वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय का रसपान करके तृप्त हुआ।
कर क्षुधा रोग अवसान चेतन मस्त हुआ।।
हे वीतराग सर्वज्ञ तुम्हारा अभिनन्दन।
चौंतीसों अतिशय युक्त जिनवर को वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय दीप प्रजाल मिथ्यातम नाशूँ।
चैतन्य ज्योति में आज निज-पर अवभासूँ।।

हे वीतराग सर्वज्ञ तुम्हारा अभिनन्दन।
चौंतीसों अतिशय युक्त जिनवर को वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय मय ध्यानाग्नि धू धू धधक रही।
कर कर्म कलंक विनाश परिणति महक रही।।
हे वीतराग सर्वज्ञ तुम्हारा अभिनन्दन।
चौंतीसों अतिशय युक्त जिनवर को वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं रत्नत्रय फल पाय निश्चय भक्ति करूँ।
शिवफल हित हे जिनराय आतम शक्ति वरूँ।।
हे वीतराग सर्वज्ञ तुम्हारा अभिनन्दन।
चौंतीसों अतिशय युक्त जिनवर को वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय अर्घ्य बनाय चेतन को अर्पित।
अनुपम अनर्घ्य पद पाय निज में निज अर्पित।।
हे वीतराग सर्वज्ञ तुम्हारा अभिनन्दन।
चौंतीसों अतिशय युक्त जिनवर को वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला*

दोहा

दर्श-ज्ञान-चारित्रमय, एक मुक्ति का मार्ग।
साध्यसिद्धि की यह विधि, अन्य सभी उन्मार्ग।।

* यह जयमाला समयसार, गाथा १५ की आत्मख्याति टीका का भावानुवाद है।

वीरछंद

जैसे धन का अभिलाषी, धनवानों की सेवा करता।
उनकी श्रद्धा और ज्ञानकर उनका पथ ही अनुसरता।।
मात्र मुक्ति की अभिलाषा से जीवराज को मैं जानूँ।
श्रद्धा-ज्ञान-चरित्र भाव से शिवपुरपथ निश्चित मानूँ।।
साध्यभूत निष्कर्म अवस्था इसी मार्ग से होती प्राप्त।
अन्य मार्ग से अनुपपत्ति है कहते सदा जिनेश्वर आप्त।।
भेदों के मिश्रण में भी अनुभूति मात्र मैं ज्ञानस्वरूप।
भेद-ज्ञान की कला कुशलता, देखूँ निज चेतन चिद्रूप।।
अपने को अनुभूति मात्र मैं, जानूँ ऐसी करूँ प्रतीति।
हो निःशंक प्रवृत्ति आत्म में, साध्य-सिद्धि की यही सुरीति।।
यह अनुभूति स्वरूप आत्मा ज्ञानतरंगों में उछले।
पर से है एकत्व जिसे, उस मूढ़बुद्धि को नहीं मिले।।
मैं अनुभूति स्वरूप मात्र यह आत्मज्ञान यदि उदित न हो।
तो श्रद्धान नहीं होगा फिर चेतन निज में मुदित न हो।।
साध्यसिद्धि की अनुपपत्ति से भव-भव के दुःख पाये हैं।
किन्तु जिनेश्वर के प्रसाद से मंगलमय दिन आए हैं।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वपुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

एक शतक सत्तर जिनेश को ध्याइये।
उनकी गौरव गाथा सुन हर्षाइये।।
जिनपूजन आनंदमयी शिवदाय है।
आत्मतत्त्व का दर्शन ही सुखदाय है।।
मोहशत्रु का नाश करूँ निज भाव से।
पाऊँ निज पद राज विशुद्ध स्वभाव से।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

५
पश्चिम पुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्माली मेरुसम्बन्धी
चौंतीस तीर्थंकर पूजन

स्थापना

वीरछंद

पुष्करार्ध पश्चिम में विद्युन्माली मेरु महान प्रसिद्ध।
पूर्व और पश्चिम विदेह में, सोलह–सोलह जिन सुप्रसिद्ध।।
इक ऐरावत उत्तर–दक्षिण भरत, एक सब मिल चौंतीस।
सादर सविनय अष्ट द्रव्य ले पूजन करूँ झुकाऊँ शीश।।
वस्तुस्वरूप विचार करूँ मैं, मन भी अब पावे विश्राम।
निर्विकल्प रस पान करूँ मैं, अनुभव है आगम में नाम।।
आओ श्री जिनराज पधारो मम परिणति में लो अवतार।
शिवपुरपथ पर गमन करूँ मैं आत्मतत्त्व का ले आधार।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्राः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

राधिका

मैं निर्विकल्प अनुभव जल लेकर आऊँ।
जो है अनादि का मोह–कलंक नशाऊँ।।
जिनचरणों में यह निर्मल नीर चढ़ाया।
चौंतीसों जिन की छवि ने मुझे लुभाया।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो जन्म–जरा–मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्यचन्द्र की शीतल अनुभव किरणें।
आताप नशूँ आनन्द के झरते–झरने।।
मलयागिरि चन्दन जिन–चरणों में लाया।
चौंतीसों जिन की छवि ने मुझे लुभाया।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत अवलम्बन लिया आज चेतन का।
क्षत–विक्षत होकर मोह क्षीण आतम का।।
धवलोज्ज्वल अक्षत प्रभु चरणों में लाया।
चौंतीसों जिन की छवि ने मुझे लुभाया।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

यह जगत सदा ही मोह शत्रु से हारा।
अनुभव केशर ने काम शत्रु को मारा।।
अब जिन चरणों में भक्ति–सुमन ले आया।
चौंतीसों जिन की छवि ने मुझे लुभाया।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः कामबाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अनुभव रस पी मैं पूर्ण तृप्त हो जाऊँ।
चिर ज्ञेयलुब्धता को परिपूर्ण नशाऊँ।।
आनन्द अतीन्द्रिय रसमय भोग लगाया।
चौंतीसों जिन की छवि ने मुझे लुभाया।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं निर्विकल्प अनुभव का दीप जलाऊँ।
चैतन्य ज्योति से मोह–तिमिर विनशाऊँ।।

कैवल्य किरण में आत्मसूर्य दिखलाया।
चौंतीसों जिन की छवि ने मुझे लुभाया।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मानुभूति का धूम्र व्योम में छाया।
है द्रव्य-भाव-नोकर्म आज विनशाया।।
शुभ भक्ति राग पावक में अशुभ जलाया।
चौंतीसों जिन की छवि ने मुझे लुभाया।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं निर्विकल्प अनुभव रसमय फल पाऊँ।
शुभ अशुभकर्म के फल से दृष्टि हटाऊँ।।
परमार्थ भक्तिमय अनुपम फल अब पाया।
चौंतीसों जिन की छवि ने मुझे लुभाया।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

है गुण अनन्त का वैभव निज चेतन में।
शुद्धात्म तत्त्व का अनुभव निज वेदन में।।
अब पद अनर्घ्य पाने को अर्घ्य चढ़ाया।
चौंतीसों जिन की छवि ने मुझे लुभाया।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

जिनशासन का मर्म जो, द्वादशांग का सार।
अनुभव रस का पान कर, होऊँ भवदधि पार।।

दर्श-ज्ञान-चारित्रमय, परिणमता जो आर्य।
कहते निज संचेतना, अमृतचन्द्राचार्य।।

वीरछंद

मैं अनादि से मोहित हो, उन्मत्त हुआ हूँ अप्रतिबुद्ध।
भव-भोगों से जो विरक्त, श्री गुरु समझाकर करें प्रबुद्ध।।

जैसे कोई पुरुष हस्तगत, स्वर्ण निधि को भूल गया।
अपने परमेश्वर को भूला, पुण्य-उदय में फूल गया।।

अपने को जानूँ पहचानूँ और उसी में लूँ विश्राम।
अपने में अपना अनुभव कर, होता सम्यक् आतमराम।।

चैतन्य मात्र ज्योतिमय हूँ, अपने अनुभव से जान रहा।
भेद रूप क्रम-अक्रमभाव से, भिन्न एक पहचान रहा।।

नवतत्त्वों से भिन्न शुद्ध टंकोत्कीर्ण मैं ज्ञायक भाव।
मैं सामान्य विशेष रूप, उपयोगमयी चिन्मात्र स्वभाव।।

गन्ध-वर्ण-रस स्पर्श निमित्तक होते संवेदन परिणाम।
वर्णादिकमय नहिं परिणमता अतः अरूपी आतमराम।।

यद्यपि मुझसे भिन्न सभी परद्रव्य स्वयं में शोभित हैं।
किन्तु एक परमाणु मात्र में कभी न चेतन मोहित है।।

अतः मोह उत्पन्न न होगा, भावक-ज्ञेय रूप पर से ।
मोह समूल विनष्ट हुआ है, ज्ञान-ज्योतिमय निज रस से।।

ॐ ह्रीं श्री पश्चिमपुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी चतुस्त्रिंशत् तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

एक शतक सत्तर जिनेश को ध्याइये।
उनकी गौरव गाथा सुन हर्षाइये।।

जिनपूजन आनंदमयी शिवदाय है।
आत्मतत्त्व का दर्शन ही सुखदाय है।।
मोहशत्रु का नाश करूँ निज भाव से।
पाऊँ निजपद राज विशुद्ध स्वभाव से।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

समुच्चय अर्घ्य

दोहा

अजितनाथ के काल में, तीर्थंकर जिनराज।
एक शतक सत्तर हुए, हर्षित सकल समाज।।

हरिगीतिका

निज आत्मा का ज्ञान अरु निज तत्त्व का श्रद्धान कर।
निज आत्मा में लीन होकर मुक्ति पथ पाया प्रवर।।
कैवल्य किरणों से प्रकाशित आत्म रवि है चमकता।
लोक और अलोक का वैभव समूचा झलकता।।
अनन्त दृग अरु ज्ञान से षट् द्रव्य-गुण-पर्याय का।
सामान्य और विशेष अवभासन समस्त पदार्थ का।।
नित सुख अतीन्द्रिय भोगते, हे योग बिन योगीश तुम।
निज बल अनन्तानन्त से, हे गणधरों के ईश तुम।।
हे मुक्तिपथ नायक महा ज्ञायक समूची सृष्टि के।
हे कर्म भूभृत के विदारक तुम्हीं हो वर दृष्टि के।।
यह अर्घ्य है अर्पित प्रभो! अन् अर्घ्य पद की कामना।
भी नहिं रहे अब वृत्ति में, तुम-सम बनूँ निष्कामना।।
एक शत सत्तर जिनेश्वर की करूँ मैं वन्दना।
पूज्य-पूजक की रहे नहिं भेद की भी वासना।।

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थपञ्चविदेहभरतैरावतसम्बन्धी एकशतकसत्तर-तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाजयमाला

दोहा

धन्य दिवस मंगल घड़ी, धन्य हुए परिणाम।
चिदानन्द चैतन्य में, पाऊँ पूर्ण विराम।।
इक शत सत्तर देव की, पूजन करके आज।
जन्म सफल मेरा हुआ, पाऊँ निजपद राज।।

वीरछंद

हे जिनेन्द्र! उर सिंहासन पर तेरे चरण विराजे आज।
जन्म-जन्म के पाप नशे, चित् चरण-कमल में राजे नाथ।।
सम्यक्त्व सुमन है खिला आज, तेरे दर्शन की किरणों से।
चैतन्य वाटिका में बहार आई तेरे शुभ वचनों से।।
अब भेद-ज्ञान का दीप जला निज को निज पर को पर जानूँ।
चैतन्य ज्योति की आभा में चेतन का वैभव पहचानूँ।।
कब वेश दिगम्बर धारण कर मैं पंच महाव्रत पा लूँगा।
निर्ग्रन्थों के पथ पर चलकर रत्नत्रय निधियाँ पा लूँगा।।
चढ़ शुक्ल ध्यान की श्रेणी पर कब चार घातिया नष्ट करूँ।
कैवल्य-किरण से ज्योतित हो चहुँगति का भ्रमण विनष्ट करूँ।।
फिर योग निरोध सहज होगा चैतन्य सदन मैं पूर्ण विलास।
हो कर्म अघाति नष्ट सभी शिव नगरी में हो पूर्ण निवास।।
आज जिनेश्वर की पूजन से चेतन में चित् ललचाया।
पंचेन्द्रिय वैभव तृष्णा तज निज वैभव मन में भाया।।
तेरे चरणों में वन्दन कर, बस यही भावना हो साकार।
सहज शुद्ध चैतन्य राज का परिणति में प्रकटे आधार।।

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थपञ्चविदेहभरतैरावतसम्बन्धी एकशतकसत्तर-तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ढाई द्वीप में एक साथ जो हुए तीर्थंकर भगवान।
एक शतक सत्तर जिनेन्द्र की पूजा कर पाऊँ निज भान।।
श्री जिनेन्द्र की पूजन का है यह पुनीत उद्देश्य विशेष।
बोधिलाभ हो सुगति गमन हो निजगुण संपति मिले जिनेश।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

शान्ति पाठ

चान्द्रायण

परम शांति के सागर तीर्थंकर प्रभो।
पूर्ण भक्ति से पूजा है तुमको विभो।।
अखिल विश्व में पूर्ण शान्ति हो हे जिनेश।
ईति भीति भय भ्रान्ति सर्व क्षय हो महेश।।
जिनशासन से सुरभित प्रभु यह लोक हो।
ज्ञान सुरभि से सुरभित निज चिल्लोक हो।।
इसीलिए जिनपूजन की मैंने प्रभो।
परम शान्ति हो परम शान्ति हो हे विभो।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

नौ बार णमोकार मंत्र के माध्यम से पंचपरमेष्ठी का स्मरण करें।

क्षमापना

दोहा

भूल-चूक जो भी हुई, कीजे क्षमा प्रदान।
तीर्थंकर जिनदेव प्रभु, महिमामयी महान।।
आत्मध्यान में रत रहूँ, पाऊँ सम्यग्ज्ञान।
आप कृपा से हे प्रभो, करूँ आत्मकल्याण।।

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।
सर्व-मंगल-मांगल्यं सर्वकल्याणकारकम्।
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम्।।

अपनी उन्नति में इतना समय लगाओ कि दूसरे की निन्दा करने की फुरसत ही न मिले।